प्रथम अध्याय

मुक्तिबोध: जीवन परिचय

"जिन दिनों माधवराव जी श्योपुर, जिला मुरैना के सब-इन्स्पेक्टर थे, 13 नवम्बर 1917 की रात के दो बजे गजानन का जन्म हुआ। इससे पहले उनके दो लड़के अल्पायु में ही चले गए थे। देश के इतिहास में यह समय था, जब सामाजिक जागृति के साथ-साथ राजनैतिक आंदोलन भी जोर पकड़ने लगा था, लेकिन जागरण का वह रूप था, आंदोलन का वैसा स्वर देशी रियासतों में नहीं के बराबर था। सब-इन्स्पेक्टर की अपने इलाके में राजा जैसी छाप हुआ करती थी, वह नगर-कोतवाल कहलाता था।"[1]

मुक्तिबोध का जन्म 13 नवम्बर 1917 को श्योपुर ग्राम, जिला मुरैना (ग्वालियर) में हुआ। मुक्तिबोध के पिता माधवराव जी मुरैना जिला में सब-इन्स्पेक्टर थे। पिता के सब-इन्स्पेक्टर पद पर कार्यरत होने के कारण मुक्तिबोध का अध्ययन अलग-अलग स्थानों पर हुआ। उनका बचपन, विदिशा, अजमेर सरदारपुर में संपन्नता से बीता है। इसके संबंध में शरतचन्द्र मुक्तिबोध ने लिखा है- "बड़े भैया बहुत लाड़-प्यार में पले थे। पहले दो लड़के गुजर जाने से माता-पिता उनको आँख से ओझल नहीं होने देते थे। माँ का एक स्मरण यहाँ जोड़ रहा हूँ। तब भाईसाहब चार-पाँच साल के थे। पिताजी सब-इन्स्पेक्टर पुलिस थे। भाई साहब को तब थाने के बरामदे में बिठा दिया जाता। एक सिपाही दूसरे सिपाही को पीटने का बहाना करता। दूसरा मानो डरा हुआ भाईसाहब की शरण में आता और कहता- 'देखो रज्जन भैया, हमें मारा' और झूठ-मूठ का रोने लगता। रज्जन

भैया फौरन कुर्सी से नीचे कूद पड़ते और पिताजी की छड़ी उठाकर मारने वाले सिपाही के पीछे दौड़ पड़ते। वह सिपाही छिपता फिरता, फिर पकड़ में आ जाता, उनकी मार खाता। वर्दी में लैस पिताजी यह देख अपनी घनी-घनी मूँछों में से हँसते रहते।"[2] मुक्तिबोध बचपन से ही अंतर्मुखी थे।

मुक्तिबोध की माता पार्वतीबाई एक समृद्ध किसान परिवार से ताल्लुक रखती थी। वे हिंदी वातावरण में पली-बढ़ी थी। मुक्तिबोध को अपनी माँ से विशेष लगाव था। वे छठी कक्षा तक पढ़ी थीं। वे हरिनारायण आप्टे और प्रेमचन्द की रचनाओं से प्रभावित थीं। मुक्तिबोध का साहित्य के प्रति झुकाव अपनी माता से प्राप्त हुआ। इसीलिए इनकी रचनाओं में करूणा के साथ-साथ सामाजिक उत्पीड़न के खिलाफ आक्रोश भी है। मुक्तिबोध ने माँ पार्वतीबाई के संबंध में स्वयं लिखा है- "इस बात को वह नहीं जानती है कि प्रेमचन्द के पात्रों के मर्म का वर्णन-विवेचन करके वह अपने पुत्र के हृदय में किस बात का बीज बो रही है। पिताजी देवता हैं, माँ मेरी गुरू है। सामाजिक दंभ, स्वाँग, ऊँच-नीच की भावना, अन्याय और उत्पीड़न से कभी भी समझौता न करते हुए घृणा करना उसी ने मुझे सिखाया।"[3] मातृत्वसुलभ स्वभाव का बच्चों पर बड़ा व्यापक असर पड़ता है। मुक्तिबोध पर शैशवास्था से ही सामाजिक दंभ एवं शोषण के खिलाफ प्रतिरोध का भाव उत्पन्न हो गया। इसीलिए उनकी रचना में शासन के तंत्र को मुखरता से देखा जा सकता है। मुक्तिबोध की अंतर्मुखी चेतना का विकास साहित्य के माध्यम से ही हुआ।

मुक्तिबोध 1930 में उज्जैन के माधव कॉलेज से ग्वालियर बोर्ड की मिडिल परीक्षा में बैठे और अनुत्तीर्ण रह गए। 1931 में पुनः इस मिडिल परीक्षा में बैठे और उत्तीर्ण हुए। 1935 में इंटर की परीक्षा पास की। वे 1938 में आगरा विश्वविद्यालय से बी.ए. की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। उनका अकादमिक दौर भी उथल-पुथल भरा रहा है।

मुक्तिबोध का जन्मस्थान मालवा है। मुक्तिबोध के कवि व्यक्तित्व के निर्माण में यहाँ के वातावरण का अहम योगदान रहा है- "मालवे के विस्त्रीर्ण मनोहर मैदानों में से घूमती हुई क्षिप्रा की रक्त-भव्य साँझे और विविधरूप वृक्षों की छायाएँ मेरे किशोर कवि की आद्य सौन्दर्य-प्रेरणाएँ थीं। उज्जैन नगर के बाहर का यह विस्तीर्ण निसर्ग- लोक उस व्यक्ति के लिए जिसकी मनोरचना में रंगीन आवेग ही प्राथमिक हैं, अत्यंत आत्मीय था।"[4] मुक्तिबोध का आरंभिक छात्र-जीवन में ही कवि सौन्दर्य का बोध हो गया था। मुक्तिबोध के कवि सौन्दर्य का व्यापक चित्रण भी मालवा एवं फिर इन्दौर की धरती से ही प्रारंभ हुआ। इस संबंध में उन्होंने लिखा है- "इन्दौर में मित्रों के सहयोग और सहायता से मैं अपनी आंतरिक क्षेत्र में प्रविष्ट हुआ और पुरानी उलझन-भरी अभिव्यक्ति और अमूर्त करूणा छोड़कर नवीन सौन्दर्य क्षेत्र के प्रति जागरूक हुआ। यह मेरी आत्म-चेतना थी।"[5] इस 'आत्म-वक्तव्य' में मुक्तिबोध नवचेतन कवि के रूप में समय और स्थान के स्मृतियों को संजोये हैं। वे मालवा एवं इंदौर की चर्चा वीरेन्द्र कुमार जैन को लिखे पत्रों में भी किया है- "पिछले दिनों इन्दौर गया था। मकान और रास्ते, मोड़ और गलियाँ, धूप और पेड़ों के नीचे हरी-साँवली छाया, आपकी याद दिलाती

थीं। लगता था, हम उन दिनों एक अत्यन्त स्पृहणीय कमणीय सौन्दर्यलोक में रहते थे। क्या वे दिन वापिस नहीं आयेंगे।"[6]

मुक्तिबोध अनेक स्थानों पर नौकरी की। वे सर्वप्रथम बड़नगर में मिडिल स्कूल के अध्यापक की नौकरी की। एक अध्यापक के तौर पर वहाँ वे सिर्फ चार महीने की नौकरी की, ये वाकया सन् 1938 का है। मुक्तिबोध समझौतापरस्त व्यक्ति नहीं थे। उनमें शोषण एवं अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने की प्रबल क्षमता थी। इसीलिए भी उनके जीवन में कष्टों का आना स्वाभाविक था। वे जीवन भर स्थानान्तर एवं पदान्तर की समस्या को झेलते रहे। इस संबंध में शरतचन्द्र मुक्तिबोध ने कहा है- "अपनी छोटी-छोटी इच्छाओं के भाईसाहब करीब-करीब कैदी ही थे। नौकरियाँ भी छोड़ी तो मुख्यतः अपनी इच्छा से। ऊपरी दबाव के कारण उन्हें छोड़ना एकदम आवश्यक हो गया हो ऐसा मुझे तो कम से कम नहीं मालूम।"[7]

मुक्तिबोध लगभग 1938 से नौकरी करना प्रारंभ किया। इस दौरान वे बढ़नगर, उज्जैन, शुजालपुर, कलकत्ता, बनारस इलाहाबाद, जबलपुर एवं नागपुर आदि स्थानों पर नौकरी की। इन सभी स्थानों पर मुक्तिबोध ने 'जनसामान्य' की पीड़ा को नजदीक से देखा था। वे बढ़नपुर, उज्जैन एवं शुजानपुर में अध्यापक के पद पर कार्य किए थे। इसके पश्चात् वे बनारस में 'हंस' कार्यालय में भी कार्य किए। जबलपुर के जैन हाईस्कूल में नौकरी की एवं यही कुछ दिन 'दैनिक जयहिंद' में कार्य भी किया। 1948 में नागपुर में सूचना एवं प्रकाशन विभाग में पत्रकारिता का भी कार्य किया। मुक्तिबोध के जीवन में 'अर्थ' का अभाव हमेशा

बना रहा। कभी किसी पठान से ब्याज लेकर जीवनयापन करते तो कभी किसी हिंदू साहूकार से। इस संबंध में उन्होंने पत्रों में भी उल्लेख किया है। जीवन की आर्थिक तंगी और अभाव ने मुक्तिबोध को और भी प्रखर कवि, उपन्यासकार एवं आलोचक बना दिया। इसका उल्लेख मुक्तिबोध ने जून 1957 में नेमिचन्द्र जैन के नाम लिखे पत्रों में किया है- "All India Radio की नौकरी मैं न छोड़ता, लेकिन Monthly Contract पर मैं भोपाल जाने के लिए तैयार न था। अगर आपको Government Department अथवा University में कोई अच्छी नौकरी दिखायी दे तो मुझे जरूर सूचित कीजिएगा। वैसे मुझे Lecturership की भी तलाश है, लेकिन उसमें पैसे इतने कम मिलते हैं यानि 150+30 कि अब प्रतीत होता है इतनी कम तनख्याह में मैं गतप्राण हो जाऊँगा। सब जगह एम.ए. फस्ट क्लास या डाक्टरेट माँगते हैं। मैं मात्र सेकेण्ड क्लास हूँ।"[8] वे जीवन पर्यंत नौकरी की तलाश में स्थानान्तरित होते रहे और आर्थिक समस्या से भी जुझते रहे। वे 'नया खून' पत्रिका के भी संपादक रहे हैं।

मुक्तिबोध का वास्तविक जीवन परिचय उनके लिखे पत्रों से उजागर होता है। उनके लिखे पत्रों में जीवन के तमाम आपाधापी सजीवता से उजागर हुआ है। उनका पत्राचार सबसे ज्यादा नेमिचन्द्र, जैन के नाम हैं। नेमिचन्द्र जैन और मुक्तिबोध के बीच स्नेहिल दोस्ती में शिकायत के साथ सप्रेम का भाव भी उजागर हुआ है- "I am so Sorry to have embarrassed you with prev. latter. Really, according to my habit I wrote many more to you and as usual they are lying in the dusty corners of my room like orphans."[9] मुक्तिबोध बराबर नेमिचन्द्र जैन को पत्र लिखते थे। उन पत्रों में उनके

जीवन, विचार एवं व्यक्तिगत समस्याओं का भी उल्लेख है- "गो मैं यह सोचता हूँ कि यह सब गलत है। दिन के बंधे हुए कार्य को अधिक बाँधकर करने के पक्ष में रखते हुए भी कामचोरी से दिली मुहब्बत टूट नहीं पाती। मैं मानता हूँ कि कर्त्तव्य ही सबकुछ है। पर उसके न करने का उत्तरदायित्व मानों मैं अपने ऊपर नहीं लेना चाहता। क्या जरूरी है कि कर्त्तव्य किया जाए, और उस समय आनेवाली आपकी याद को बाहर ही खड़ा रख मन के दरवाजे को बंद कर दिया जाए। मैं मानता हूँ कि कर्त्तव्य ही सबकुछ है। पर उसके न करने का उत्तरदायित्व मानों मैं अपने ऊपर नहीं लेना चाहता। क्या जरूरी है कि कर्त्तव्य किया जाए, और उस समय आनेवाली आपकी याद को बाहर ही खड़ा रख मन के दरवाजे को बंद कर दिया जाए। कर्त्तव्य के फलसफे की बात ज्यादा समझ नहीं आती।"[10] समाज गतिशील होता है और एक-एक व्यक्ति समाज का हिस्सा माना जाता है। प्रत्येक व्यक्ति का समाज के प्रति फलसफा होता है। मुक्तिबोध ने समाज और साहित्य के बीच व्यक्ति और साहित्यकार के फलसफे एवं कर्त्तव्य के भाव को उजागर किया है। उनका व्यक्तिगत जीवन काफी उतार-चढ़ाव से गुजरा है। आर्थिक परेशानियों से वे लगातार जुझते रहे हैं। इस स्थिति का वर्णन शरतचन्द्र मुक्तिबोध ने उनके जबलपुर वाले घर के विवरण के माध्यम से किया है- "त्रिपुरा गेट से घूमकर हमारा रिक्शा संकरी गलियों से गुजरने लगा। ऐसी पेचीदा और चमकदार घिनौनी गलियाँ। हमलोग तब प्लेग की बातें कर रहे थे। जबलपुर में जब प्लेग की केसेस हो गयी थी और शायद कुछ इन्हीं गलियों में भी हुई थी।

'बाबूसाब, प्लेग का इन्जेक्शन ले लिया?'

'नहीं, कुछ नहीं होता।'

'मैंने भी इन्जेक्शन नहीं लगवाया'- मैंने आवश्वत होकर कहा। लेकिन कुछ चिंता अवश्य थी। आसपास खासी मौत की महक आ रही थी। रिक्शा एक मारवाड़ी के घर के सामने रूक गया। दिन में भी गली में काफी अंधेरा था अँधेरे-छुप जाने से हम लोग तीसरी मंजिल की छत पर पहुँच गए।

'आ गया कमरा' - भाईसाहब ने संतोष से कहा। लेकिन कमरा था कहाँ? अटाला रखने का वह ऊपरी छप्पर था। एक पीला बीमार बल्ब पहले ही से जल रहा था। यहा भाईसाहब की गिरस्ती पड़ी हुई थी।"[11]

शरतचन्द्र मुक्तिबोध, गजानन माधव मुक्तिबोध के छोटे भाई थे। मुक्तिबोध से उनको काफी लगाव था। मुक्तिबोध के जीवन परिचय के विविध आयाम रहे हैं। पत्रों, डायरियों एवं कथाओं में भी उनके रचनात्मक व्यक्तित्व का परिचय मिलता है। उन्होंने नेमिचंद्र जैन, नामवर सिंह, शमशेर बहादुर, भारतभूषण अग्रवाल, वीरेन्द्रकुमार जैन आदि साहित्यकारों को पत्रों के माध्यम से जीवन और साहित्य के बदलते परिदृश्य पर अपने विचार अभिव्यक्त किए हैं। नेमिचन्द्र जैन को 26/10/1945 को लिखे पत्रों में अपने अभाव का परिचय दिया है। नेमिचन्द्र जैन उनके सबसे विश्वसत एवं सहृदय मित्र थे। मुक्तिबोध उनसे अपने जीवन के आंतरिक एवं बाह्य सुख-दुख जाहिर करते थे- "मेहनत करू तो लेखन से पैंसे मिल सकते हैं। इसमें संदेह नहीं। पर साहित्यिक श्रम जितना अधिक आवश्यक है उतना ही अभाव है समय का। दुनिया के सारे कार्यों से निवृत हो, थकी हुई पीठ

और बोझिल मास्तिष्क ले, टिमटिमाते कन्दील के धुँधले प्रकाश, में कलम चलने तो लगती है पर खुद कोसती हुई।"[12]

मुक्तिबोध गिरस्त जीवन की कठनाई से परिचित थे। जीवनयापन करने के लिए मूलभूत चीजों की आवश्यकता होती है। वे उस मूलभूत आवश्यकता से भी वंचित थे। घर-गिरस्ती और व्यक्तिगत जिम्मेदारी के बीच मुक्तिबोध एकांत सोच में पड़ जाते हैं- "परन्तु मेरी आँखों के सामने घर-गिरस्ती को देखकर काले सपने आया करते हैं। मैं वजन सम्हाल नहीं पाया; और हर महीने की तारीख के बाद दिवालियापन सताता रहता है- त्रुद्ध प्रेत-सा।"[13] मुक्तिबोध अपने पत्रों में बड़ी मुखरता से लिखते थे। आर्थिक अभाव व्यक्ति को नीरस बना देता है। इस अभाव से उबरने का प्रयत्न मुक्तिबोध लगातार करते है। कभी स्थान परिवर्तित कर तो कभी नौकरी में तब्दीली कर। उन्हें कभी भी इस समस्या का स्थायी समाधान नहीं मिला। धीरे-धीरे वैचारिक संघर्ष के साथ व्यक्तिगत संघर्ष भी बढ़ता ही गया। इस आर्थिक दलदल से वे बाहर आने का हमेशा प्रयास करते थे- "किन्तु आज सहसा मैं अपनी जगह आ गया था, क्षणभर के लिए ही सही, मैं अपने से चेतन हो उठा। मेरी ज्ञान-तृषा, सौन्दर्य भक्ति तथा मुक्त हृदय-दान तथा स्वानुकूल कर्मण्य-शक्ति का मानो मुझे, क्षणभर के लिए ही सही, बोध हो गया जिसकी आग अभी-अभी राख हो जाएगी। जिस जिन्दगी को जीने का मुझे आदेश मिला है, वह कुछ दूसरी ही थी। यह नहीं। परन्तु, फिर भी, यह चाहता हूँ कि मैं इस दलदल को भी पार कर जाऊँ। सचमुच मुझे जिन्दगी की तब्दीली की बहुत बड़ी जरूरत है।"[14]

व्यक्तिगत जीवन की तमाम ऊहापोह की स्थिति में मुक्तिबोध ने जीवन में जड़त्व को कभी नहीं स्वीकारा। वे अपनी रचनात्मक जीवन में भी अत्यंत संवेदनशील रहे हैं। उनकी रचनात्मक अभिव्यक्ति के विविध स्तर हैं। उन्होंने कहानी, उपन्यास, आलोचना एवं कविताओं में सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन को भी चित्रित किया है।

कहानी:-

मुक्तिबोध की कहानियों का गठन उस दौर के कहानीकार से बिल्कुल भिन्न हैं। मुक्तिबोध की प्रथम कहानी 'खलील काका' है, जो 5 अक्टूबर 1936 की रचित है, प्रकाशन की दृष्टि से 'आखेट' उनकी प्रथम कहानी मानी जाती है। 1936 का काल छायावाद का अवसान का काल था। इसी काल में प्रेमचंद की मृत्यु हुई। इन दोनों दृष्टियों से देखें तो कहानियों में प्रगतिशीलता का कथ्य रचनाओं में आना प्रारंभ हुआ। मुक्तिबोध भी 1936 में कहानीकार के तौर पर कदम रखा था। उनकी प्रमुख कहानियाँ इस प्रकार हैं-

1. खलील काका (1936)

मुक्तिबोध की आरंभिक रचना में आदर्शवादी विचार का भाव उजागर हुआ है। 1936 में लिखी गई 'खलील काका' कहानी में मातृविहीन पुत्र रसूल से अधिक केशव को स्नेह मिला है। यह स्नेह आदर्श के भाव को उजागर करता है, जो कि प्रेमचंद की रचनाओं में भी देखा गया है। "खलील देखने लगा इस

अँधकार में एक-एक चित्र-भुलाई हुई बातें। यह अन्धकार उन चित्रों पर पड़े परदों को उठानेवाला बना। उसकी विचारधाराएँ एकाएक जाग उठीं।"[15]

2. जिंदगी की कतरन (1948-58)

मुक्तिबोध मध्यवर्गीय जीवन के प्रति जितने सचेत है, उतने ही बड़े कटु आलोचक भी। 'जिंदगी की कतरन' कहानी में मुक्तिबोध मध्यवर्ग की सामाजिक रूढ़ि एवं हृदयहीन कुपरंपराओं का चित्रण किया है। इस कहानी के केन्द्र में 'निर्मला' और 'तिवारी' है। 'निर्मला' की हत्या भारतीय सामंती समाज में प्रत्येक स्त्री की हत्या है, जो कभी कुल के नाम पर तो कभी खानदान की हैसियत के नाम पर किया जाता है। मुक्तिबोध की जितनी संवेदना 'निर्मला' से है उतनी ही संवेदना 'तिवारी' से भी है- "मैं जानता था कि उसका मस्तिष्क और हृदय दमित और पीड़ित है। किंतु उससे उद्धार का कोई उपाय न था। गरीब बड़े भाई ने उसकी शादी उससे कुछ अच्छी स्थितिवाले घर में कर दी। यहीं से उसकी जिंदगी ने पलटा खाया। उस संयुक्त परिवार को खानदानियत का रोग था।'[16] सामंतवादी समाज में स्त्री को वस्तु स्वरूप समझा जाता है। 'निर्मला' की हत्या मुक्तिबोध की दृष्टि में भारतीय सामंती समाज के बदलते इतिहास को पुर्नव्याख्यायित करता है।

3. अँधेरे में (1948-58)

'अँधेरे में' कहानी का प्रकाशन हंस पत्रिका में हुआ था। इस कहानी की शुरूवात लेखक एक युवक की यात्रा से किया है, जो रात के बारह बजे ट्रेन से स्टेशन पर उतरा है। यह कहानी यात्रा-रिपोर्ताज प्रतीत होता है- "एक रात को बारह बजे, ट्रेन से एक युवक उतरा। स्टेशन पर लोग एक कतार में खड़े थे और

ज्यादा नहीं थे। इसलिए ट्रेन से नीचे आने में उसको ज्यादा कठिनाई हुई। स्टेशन पर बिजली की रोशनी थी, परन्तु वह रात के अँधियाले को चीर तम्बूनुमा घर हो गयी थी जिसमें बिजली के दीये जलते हों।"[17] इस कहानी में लेखक ने मध्यवर्गीय आत्मचेतना को रूपायित किया है। 'अँधेरे में' कहानी का नवयुवक सामाजिक स्थितियों एवं परिस्थितियों का आत्मचिंतन करता है। मध्यवर्गीय पलायनता को मुखरता से उजागर किया गया है। भारतीय समाज में मध्यवर्गीय मानसिकता की खामी भी है। मध्यवर्ग आत्मसंतोष की जड़ता से भी मुक्त नहीं होता है। 'अँधेरे में' कहानी सामाजिक भ्रष्टाचार को उजागर करता है। 'अँधेरे में' कहानी का नायक प्रगतिशील है। वह तमाम संकट का सामना करता है, लेकिन स्थितियों से समझौता नहीं करता है।

4. पक्षी और दीमक (1959)

'पक्षी और दीमक' कहानी की शुरूआत इस प्रकार होती है- "बाहर चिलचिलाती हुई दोपहर; लेकिन इस कमरे में ठंडा मद्धिम उजाला है। यह उजाला इस बन्द खिड़की की 'दरारो' से आता है। यह एक चौड़ी मुँडेरवाली बड़ी खिड़की है, जिसके बाहर की तरफ दीवार से लगकर, काँटेदार बेंत की हरी घनी झाड़ियाँ हैं।"[18] लेखक इस कहानी में छत्तीसगढ़ के मौसम-बेमौसम की हवाओं का जिक्र करते हैं और कहानी के कथ्य को केन्द्रित करते हुए पक्षी और दीमक के माध्यम से भ्रष्टाचार के तमाम तंत्र को व्याख्यायित करता है- "लेकिन दीमकें सिर्फ जमीन पर मिलती थीं। कभी-कभी पेड़ों पर जमीन से तने पर चढ़कर, ऊँची डाल तक,

वे अपना मटियाला लम्बा घर बना लेती। लेकिन, ऐसे कुछ ही पेड़ होते, और वें सब एक जगह न मिलते।"[19]

5. एक दाखिल दफ्तर साँझ (1948-58)

'एक दाखिल दफ्तर साँझ' कहानी का प्रकाशन 1968 में साप्ताहिक पत्र हिंदुस्तान में हुआ था। इस कहानी में भी लेखक ने मध्यवर्गीय लोगों के मानसिक स्थिति का चित्रण किया है। मध्यवर्गीय बाबू वर्ग समकालीन समय की जितनी बड़ी सामाजिक संकट है, उतनी ही तत्कालीन समय में थी। कहानी की शुरूआत लेखक ने कचहरी के वातावरण से होती है। जहाँ नीम, सेमल और इमली के बड़े-बड़े दरख्त खड़े हैं। लेखक ने रामेश्वर नामक पात्र से कहानी की पात्रात्मक सूचना देते हैं, जो शरीर से दुर्बल है। इस कहानी में अनेक पात्र हैं, लेकिन कहानी का केन्द्रबिंदु मिस्टर वर्मा के इर्दगिर्द ज्यादा घूमता है। मिस्टर वर्मा ही दफ्तर के नियम बताते हैं। कहानी में अवसरवाद के साथ-साथ चापलूस लोगों के चरित्र का खंडन किया है- "नौकरी में वर्मा साहब, कोई किसी का न दोस्त है, न दुश्मन। जब किसी पर आ बनती है तो कौन अपनी सुरक्षा की कीमत पर दूसरों की मदद करता है।"[20] डॉ. विजयमोहन सिंह के अनुसार- "दूसरों को अन्याय करने की छूट देना है, जिससे एक 'न्यस्त स्वार्थ' की प्रवृत्ति बनती है। 'रचनावली' में इस कहानी के दो तरह के अंत हैं, जो यदि सही हैं तो ये स्वयं मुक्तिबोध के भीतर के किसी गहरे अंतर्द्वंद को सूचित करते हैं कि किसी ऐसे आदमी को सहानुभूति दी जाए या नहीं? क्या फिर वह 'लौट' सकता है। कोई भी ऐसा आदमी।"[21] इस कहानी में लेखक ने मध्यवर्गीय संघर्ष से बचने वाले लोगों का चित्रण किया है।

रामेश्वर एवं मि. वर्मा के संवाद से साफ जाहिर होता है- "वर्मा ने व्यंग्य से मुसकराकर कहा, " 'प्रगतिवादी' इस शब्द से क्यों डरते हैं? मैं स्वयं प्रगतिवादी हूँ। एक नामहीन प्रगतिवादी।"

"मैं उस शब्द से नहीं डरता क्योंकि समय था जब मैं उस शब्द को अपना विशेषण मानता था।"[22]

6. उपसंहार (1950)

उपसंहार कहानी संभवतः 1950 के दशक में लिखी गयी कहानी है। इस कहानी में लेखक ने मध्यवर्गीय आर्थिक विषमता एवं उसकी मजबूरी का रूपायन किया है। गरीबी जन्मजात नहीं होती है।

यह आर्थिक असमानता के कारण फैलती है। मुक्तिबोध 'उपसंहार' कहानी में इस आर्थिक विद्रूपता का चित्रण रामलाल और सावित्री के जीवनशैली के माध्यम से किया है। मुक्तिबोध इस कहानी की रूपरेखा को आसपास के वातावरण से चित्रित किया है- "अस्त-व्यस्त बाल और उतना ही अस्त-व्यस्त सा स्वास्थ्य। एकदम बीमार और बेचैन छाया थी वह आँखों के आसपास मरे हुए निर्जीव काले वर्तुल और शरीर पर वह। मोटा होने पर भी रक्तहीनता की निर्जीव श्यामलता थी। मैली, फटी हुई-सी मरदानी धोती पहने थी वह।"[23] इस कहानी में रामलाल और सावित्री की दारूण स्थिति का चित्रण है। सावित्री अपने बच्चों को झूठी दिलासाएँ देती है। रामलाल की गरीबी का चित्रण लेखक ने इस प्रकार किया है- "वास्तविकता यह थी कि रामलाल अफसर नहीं, जण्डेल नहीं, अखबार का मालिक नहीं, बल्कि एक दरिद्र व्यक्ति हो रहा था, जो एक-एक पैसे के लिए मारा-

मारा फिरता है। पति-पत्नी दोनों के सामने आशा के स्वप्न-चित्र न थे, मूर्त-दृश्य आशा के महल-किसी भी तरीके से गुजारा हो, बीमार को दवा मिले और खाने को रोटी और तन को कपड़ा। उसकी दरिद्रता की ओर ऊँगली उठानेवाले समाज को बहुत दूर छोड़ वे दोनों इधर आ बसे थे।"[24]

7. क्लॉड ईथरली (1959)

मुक्तिबोध इस कहानी में लिखते है- " क्लॉड ईथरली हमारे यहाँ भले ही देव रूप में न रहे, लेकिन आत्मा की वैसी बेचैनी रखने वाले लोग तो यहाँ रह ही सकते हैं।"[25] इस कहानी में लेखक अस्तित्व के संकट का चित्रण किए हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् मानव समाज अनेक प्रकार की सामाजिक एवं राजनीतिक संकट का सामना कर रहा इस कहानी में लेखक ने अंतरात्मा और अस्तित्व दोनों के संकट को उजागर करता है "उसने भौंहे समेट लीं। मेरी आँखों में आँखे डालकर उसने कहना शुरू किया, "जो आदमी आत्मा की आवाज कभी-कभी सुन लिया करता है और उसे बयान करके उससे छुट्टी पा लेता है, वह लेखक हो जाता है।..... लेकिन जो आदमी आत्मा की आवाज जरूरत से ज्यादा सुन करके हमेशा बेचैन रहा करता है और उस बेचैनी में भीतर के हुक्म का पालन करता है, वह निहायत पागल है। पुराने जमाने में संत हो सकता है। आजकल उसे पागलखाने में डाल दिया जाता है।"[26] इस कहानी के संदर्भ में अनेक आलोचकों की अलग-अलग राय है। डॉ. नामवर सिंह ने कहा है- 'इतिहास के विराट परिप्रेक्ष्य में मनुष्य की नियति आज क्या है, अगर उसे देखना हो तो 'क्लाड ईथरली' को देखें।

'क्लॉड ईथरली' वस्तुतः अंतर्राष्ट्रीय पूँजीवाद का पोल खोलती है। इस पूँजीवादी व्यवस्था में प्रत्येक तंत्र नाभिनालबद्ध है।

8. काठ का सपना (1963)

'काठ का सपना' कहानी 1963 में कल्पना पत्रिका में छपी थी। इस कहानी में लेखक समाज और व्यक्ति की आंतरिक मनोस्थिति का चित्रण किया है। काठ का सपना व्यक्ति के संवेदनात्मक मनोभूमि के उतार-चढ़ाव, सामजंस्य एवं समझौता को उजागर करता है, जो कि न चाहते हुए भी मध्यवर्ग को इसकी संगति करनी पड़ती है। इस कहानी का थका, हारा और निराश पिता स्वप्न देखता है- "...दोनों स्त्री-पुरुष के जीवन पर विराम का पूर्ण चिन्ह लग गया है, काठ हो गये हैं। बाढ़ आती है। किनारे पर पड़े हुए काठों को बहाकर ले जाती है। जल-विप्लव हैं काठ बह जाते हैं, फिर भी वे प्राणहीन काठ आपस में गुँथे हुए बहे जा रहे हैं।"[27] इस कहानी में लेखक ने पिता की अक्षमता एवं हताशा का चित्रण किया है। इस कहानी में व्यक्ति की 'निष्क्रियता' और 'अभाव' दोनों का सजीव चित्रण हुआ है, जिसमें पिता की बेवसी की भी झलक है और पुत्री सरोज की मानसिक स्थिति की भी।

इसके अतिरिक्त भी मुक्तिबोध ने अनेक कहानियों की रचना की है। जैसे 'सतह से उठता आदमी', 'जलना', 'समझौता', 'प्रश्न', 'मोह और मरण' और 'मैत्री की माँग' आदि है। इन सभी कहानियों में लेखक ने समाज की आर्थिक, राजनीतिक एवं पूँजीवादी व्यवस्थाओं का चित्रण सूक्ष्मता से किया है।

उपन्यास

विपात्र (1963-64 संभावित)

विपात्र उपन्यास ज्ञानोदय पत्रिका में प्रकाशित हुआ है। यह लघु उपन्यास आधुनिक काल की सामाजिक स्थिति एवं वर्गीय समाज के सामाजिक यथार्थ को भी उद्घाटित करता है। इस उपन्यास की शुरूआत मुक्तिबोध ने प्राकृतिक वातावरण से किया है। यह प्रतीकात्मक उपन्यास है। मुक्तिबोध ने विद्याकेन्द्र को केन्द्रीकृत कर समकालीन व्यवस्था पर प्रहार किया है, जिसमें डायरेक्ट बॉस पूँजीपति का प्रतिनिधि है, जिसने नयी पीढ़ी को खरीद लिया है। दूसरा वर्ग अवसरवादी मध्यवर्गीय समाज है, जिसका प्रतिनिधि रावसाहब कर रहे हैं लेखक ने रावसाहब का परिचय इस प्रकार दिया है- "राव साहब इस वक्त जिस सीढ़ी पर हैं उसकी अगली सीढ़ी का नक्शा बराबर ध्यान में रखते थे। उस अगली सीढ़ी के तरकीबें भी जानते थे और अपना मुँह हमेशा उसी तरफ रखते। वे सिर्फ मौजूदा जरूरत के लायक पढ़ लिया करते। सामाजिक वार्तालाप में पिछड़ जाने के भय पर विजय प्राप्त करने के लिए वे दो-चार अखबार भी रोज देख लिया करते। प्रायः चुप रहते और खूब मेहनत करते। महाकाव्य के धीरोदात्त नायक की भाँति ही धर्म, बुद्धि, कर्त्तव्यपरायणता और दयाशीलता की सुशिल्पित मुर्ति थे। लेकिन, काम पड़ने पर, अवसर के अनुसार पवित्र नियमों से इधर-उधर हटकर भी अपना मतलब साध ही लेते।"[28] लेखक ने रावसाहब के चरित्र को अवसरवादी, पदलिप्सा भ्रष्टाचारी और समझौतापस्त व्यक्ति के रूप में अभिव्यंजित किया है, जो बाह्य दृष्टि से उदार हैं, लेकिन पीठ पीछे बुराई भी करता है। विपात्र उपन्यास में जगत सिंह, थनावत, बॉस मुख्य पात्र हैं, जो इस उपन्यास के विविध वैचारिक दृष्टि को उजागर करता है।

'विपात्र' उपन्यास आधुनिक समाज की अधिकांश व्यवस्थाओं का चित्रण करती है, जिसमें मानवीय मूल्य का ह्रास प्रतीत होता है। समाज का संबंध मनुष्य के सामूहिकता में निहित है। एकांत कुछ क्षण के लिए ठीक हैं, लेकिन जीवनपर्यंत मानव एक दूसरे से अलग नहीं रह सकता। लेखक ने कहानी के विकास में प्रतीक, बिंब रूपक इत्यादि का यथानुकूल प्रयोग किया है। मुक्तिबोध ने प्रत्येक पात्र को मनोविश्लेषणात्मक तरीके से रूपायित किया है। आज का आधुनिक समाज यांत्रिकी समाज है, जिसमें पूँजी का महत्त्व भी है और वर्चश्व भी। लेखक इन दोनों स्तर को सूक्ष्मता से उजागर किया है- "मुझे इस बातचीत से वितृष्णा हो उठी। मुझे बिजिनेस नहीं दीखता था, वरन् मानव-समुदाय दीखते जो विशेष-विशेष स्वार्थों और हितों की दिशा में कार्यशील थे। मुझे मानव-समुदायों खास व्यक्ति और उनके व्यक्तित्व, उनके परस्पर-संबंध और उनकी जीवन-प्रणाली दीखती थी।"[29]

कविता

मुक्तिबोध मूल रूप से कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं। उनकी कविता का बहु-वैविध्य संसार है। मुक्तिबोध के दो काव्य संकलन हैं-

1. चांद का मुँह टेढ़ा - 1964
2. भूरी-भूरी खाक धूल - 1980

इन दोनों संकलन में मुक्तिबोध का कवि-व्यक्तित्व प्रखरता से उजागर हुआ है। इस संकलन के कविताओं में मुक्तिबोध 'तारसप्तक के कवि' के रूप में नहीं,

अपितु सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक रूप से अधिक प्रबुद्ध एवं विचारशील नजर आते हैं। उनकी अधिकांश रचनाओं में भारतीय समाज के तमाम विद्रूपता एवं विषमता उजागर हुआ है। उनकी रचनाओं में सामाजिक असमानता, पूँजीवाद, आर्थिक विषमता, पाखंड, भ्रष्टाचार, राजनैतिक अवसरवादिता मध्यवर्गीय जड़ता इत्यादि संदर्भ अभिव्यंजित हुआ है। मुक्तिबोध की कविताओं में उक्त संदर्भ प्रखरता से लिखा गया है, जहाँ लेखक का आत्मचिंतन सामंती-पूँजीवादी व्यवस्था के प्रति विद्रोह, साफ-साफ जाहिर करता है। उनकी कविताओं के संदर्भ में रमेशकुंतल मेघ ने लिखा है- "मुक्तिबोध के जीवन और जीवनदर्शन के विचार और अनुभव का इतना गहरा मिलाप है, यथार्थ और फंतासी का इतना ऊँचा अभिषेक है, भाषा और पुकार का इतना तादात्म्य है कि उनमें तुलसी और निराला के बाद दूसरा वह आत्मकथात्मक कवि पातें जो आत्मविश्लेषण और आत्मभर्त्सना ही करता है, आत्मगौरवान्वयन और आत्मप्रचार कतई नहीं। उनके जीवनदर्शन के शब्द-शब्द, वाक्य-वाक्य और पद-पद से मार्क्सवाद की पथरीली-चमकीली दृष्टि है।"[30] उनकी कविताओं में उक्त विवेचन भी देखा जाता है। उनकी प्रसिद्ध कविताओं का कुछ अंश इसप्रकार हैः-

ब्रह्मराक्षस (1957)

"समुरी - बैबिलोनी जन-कथाओं से
मधुर वैदिक ऋचाओं तक
व तब से आज तक के सूत्र
छन्दस मन्त्र, थियोरम
सब प्रमेयों तक

कि मार्क्स, एंजेल्स, रसेल, टॉरन्बी

कि हीडेगर व स्पेग्लर,सार्त्र, गाँधी भी

सभी के सिद्ध-अन्तों का

नया व्याख्यान करता वह

नहाता ब्रह्मराक्षस, श्याम

प्राक्तन बावड़ी की उन धनी गहराईयों में शून्य।"[31]

मुक्तिबोध इस कविता में ब्रह्मराक्षस को सामान्य ब्राह्मण के रूप में व्याख्यायित नहीं किया है, अपितु बुद्धिजीवी प्रेत-आत्मा के रूप में अभिव्यंजित किया है।

अँधेरे में (1964)

"इसीलिए मैं हर गली में

और हर सड़क पर

झाँक-झाँक देखता हूँ हर एक चेहरा,

प्रत्येक गतिविधि

प्रत्येक चरित्र

वह हर एक आत्मा का इतिहास

हर एक देश व राजनीतिक स्थिति और परिवेश

प्रत्येक मानवीय स्वानुभूत आदर्श

विवेक-प्रक्रिया, क्रियागत परिणति।।

खोजता हूँ पठार... पहाड़..... समुन्दर

जहाँ मिल सके मुझे

मेरी वह खोयी हुई
परम अभिव्यक्ति अनिवार
आत्म-सम्भव।"[32]

'अँधेरे में' कविता मुक्तिबोध की बौद्धिक प्रखरता को उजागर करता है, जिसमें भारतीय राजनीति की विद्रूपता, लोकतांत्रिक व्यवस्था बनाम तानाशाही व्यवस्था, इतिहास एवं इतिहासबोध के अधिकांश पक्षों का भी उल्लेख हुआ है। यह कविता शासन-व्यवस्था के नाभिनालबद्ध तंत्र का उल्लेख करता है। जिसमें भय, शंका, एवं विद्रोह का स्वर है। मुक्तिबोध इस कविता में जनसामान्य की स्थिति का भी चित्रण किए हैं। आधुनिक पूँजीवादी व्यवस्था का वर्गीय चरित्र भी प्रमुखता से उजागर हुआ है।

चाँद का मुँह टेढ़ा है (1964)

"नगर के बीचोबीच
आँधी रात... अँधेरे की काली स्याह
शिलाओं से बनी हुई दिवालों के घेरों पर,
अहातों के काँच-टुकड़े-जमे-हुए
ऊँचे-ऊँचे कन्धों पर, सिरों पर
चाँदनी की फैली हुई सँवलाई झालरे।
कारखाना-अहाते के उस पार
कलमुँही चिमनियों के मीनार
उद्गार-चिन्हाकार।

मीनारों के बीचोंबीच चाँद का है टेढ़ा मुँह

लटका,

मेरे दिल में खटका...

कहीं कोई चीख कहीं बहुत बुरा हाल रे!!

अजीब है।"[33]

मुक्तिबोध इस कविता में सामंती एवं पूँजीवाद व्यवस्था के शोषण तंत्र को उजागर किया है। लेखक इस कविता में शोषित समाज की वस्तुस्थिति का चित्रण किया है। जिसमें मजदूर का पोस्टर शोषणतंत्र के खिलाफ प्रतिरोध को दर्शाता है।

यह प्रतिरोध बरगदनुमा पूँजीवादी व्यवस्था के खिलाफ है, जिसकी जड़े दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है, जिसमें सामंत और शासन दोनों का सहयोग प्राप्त है। यह कविता इन तमाम तंत्र पर व्यंग्य एवं प्रहार करती प्रतीत होती है।

इसके अतिरिक्त मुक्तिबोध ने अनेक कविताओं की रचना की हैं, जिसमें सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं पूँजीवादी व्यवस्था के खिलाफ प्रखर स्वर विद्यमान हैं। जैसे-

1. पूँजीवादी समाज के प्रति
2. शब्दों का अर्थ जब
3. एक भूतपूर्व विद्रोही का आत्म-कथन
4. दिमागी गुहान्धकार का ओराँग-उटाँग

5. भूल-गलती इत्यादि।

आलोचना

मुक्तिबोध की आलोचना अन्य आलोचकों की तुलना में अधिक वैज्ञानिक एवं तर्कसम्मत है। उन्होंने आलोचना के पूर्व परंपरा से अलग रचना एवं आलोचना की तार्किक व्याख्या प्रस्तुत की है आलोचना समाज को दिशा प्रदान करता है। यह दिशा इस बात पर निर्भर करती है कि आलोचना का आयाम कितना तार्किक एवं वैज्ञानिक है। छायावाद के अवसान के बाद प्रगतिवाद का उदय हुआ, जिसमें रचनाकार के कथ्य और शिल्प दोनों में परिवर्तन देखा गया। मुक्तिबोध की आलोचना में रचना के सतही पक्ष, उसकी पक्षधर्मिता एवं वैचारिक दृष्टि प्रमुखता से उजागर हुआ है। उनकी प्रमुख आलोचनात्मक पुस्तक इस प्रकार हैं-

1. कामायनी: एक पुनर्विचार
2. भारत: इतिहास और संस्कृति
3. नई कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध
4. नए साहित्य का सौंदर्यशास्त्र
5. एक साहित्यिक की डायरी

मुक्तिबोध की उपर्युक्त पुस्तक में साहित्य, समाज, इतिहास, राजनीति इत्यादि का विवेचन है। लेखक का इतिहासबोध अन्य आलोचकों की तुलना में

अधिक तथ्यपरक है। वे साहित्य को जीवन मानते हैं, और जीवनविवेक भी। इसीलिए उनकी रचनात्मक अनुभूति में संघर्ष भी है और संवेदना भी, ज्ञान भी और बोध भी। उन्होंने ज्ञान एवं बोध की असीमित परिसीमा को जीवन और व्यवहार के दायरे में भी प्रयोग किया है। मुक्तिबोध जीवनपर्यंत आर्थिक अभाव में गुजारे। शासन, समाज और सत्ता के शोषणकारी तंत्र के खिलाफ आवाज भी बुलंद किए। उनकी रचनाओं में संघर्ष का पर्याय सिर्फ बाह्य संघर्ष ही नहीं है, अपितु आंतरिक भी है। यह आंतरिक संघर्ष व्यक्ति और रचनाकार के आत्म-परिष्कार को दर्शाता है।

मुक्तिबोध का संपूर्ण जीवन इस बात का पूख्ता सबूत है, जो उन्होंने जीया, भोगा और वैचारिक रूप में अभिव्यक्ति किया है। उनके साहित्य एवं समाजदर्शन के केन्द्र में 'जन' का भाव है, जिसका सरोकार समाज के समावेशी पक्ष को व्याख्यायित करता है। उनके साहित्य के मूल तत्व में समन्वय के साथ-साथ जीवनमूल्य के तमाम जीवनादर्श भी हैं, जो एक समावेशी समाज के निर्माण में सहायक सिद्ध होगा।

मुक्तिबोध अपने जीवन के कठिन सामाजिक, राजनैतिक एवं वैचारिक संघर्ष को सहर्ष स्वीकारा भी और शासन सत्ता और समाज के मनगढ़ंत पाखंड शोषण इत्यादि का प्रतिरोध भी किया। जीवन के अंतिम क्षण वे राजनांदगांव में बिताएं। शारीरिक दुर्बलता एवं बीमारी के कारण वे अस्वस्थ रहने लगे। 15 दिसम्बर 1964 को मुक्तिबोध का इण्डियन मेडिकल इन्स्टीट्यूट दिल्ली में देहावसान हो गया। साहित्य जगत का एक प्रखर, कवि, आलोचक एवं कहानीकार

का शारीरिक अंत तो हो गया, लेकिन ऐसी वैचारिक दृष्टि, वैज्ञानिक सोच, जो आज भी पाठक के लिए प्रेरणाश्रोत है।

संदर्भ

1. गौतम, लक्ष्मण दत्त; गजानन माधव मुक्तिबोध; विद्यार्थी प्रकाशन, वैस्ट आजादनगर, दिल्ली; संस्करण: 1972, पृ. सं.- 7
2. वही, पृ. सं.- 10
3. जैन, नेमिचन्द्र; मुक्तिबोध रचनावली (खंड-5); राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 1986, तीसरी आवृत्ति:2011, पृ. सं.- 429
4. वही, पृ. सं.- 265
5. वही, पृ. सं.- 265
6. जैन, नेमिचंद्र; मुक्तिबोध रचनावली (खण्ड-6); राजकमल प्रकाशन दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 1986, पृ. सं.- 344
7. गौतम, लक्ष्मण दत्त; गजानन माधव मुक्तिबोध; विद्यार्थी प्रकाशन, वैस्ट आजादनगर, दिल्ली; संस्करण: 1972, पृ. सं.- 14
8. जैन, नेमिचन्द्र; मुक्तिबोध रचनावली (खण्ड-6); राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 1986, पृ. सं.- 324

9. वही, पृ. सं.- 251

10. वही, पृ. सं.- 226

11. गौतम, लक्ष्मण दत्त; गजानन माधव मुक्तिबोध विद्यार्थी प्रकाशन, वैस्ट आजादनगर, दिल्ली; संस्करण: 1972, पृ. सं.- 9

12. जैन, नेमिचन्द्र; मुक्तिबोध रचनावली (खण्ड-6); राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 1986, पृ. सं.- 228

13. वही, पृ. सं.- 228

14. वही, पृ. सं.- 230-231

15. जैन, नेमिचन्द्र; मुक्तिबोध रचनावली (खण्ड-3); राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 1986, पृ. सं.- 15

16. वही, पृ. सं.- 73

17. वही, पृ. सं.- 76

18. वही, पृ. सं.- 141

19. वही, पृ. सं.- 149

20. वही, पृ. सं.- 55

21. सिंह, डॉ. विजय मोहन; आज की कहानी; राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण: 1983, पृ. सं.- 29-30

22. जैन, नेमिचन्द्र; मुक्तिबोध रचनावली (खण्ड-3); राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 1986, पृ. सं.- 61

23. वही, पृ. सं.- 89

24. वही, पृ. सं.- 91

25. वही, पृ. सं.- 160

26. वही, पृ. सं.- 155

27. वही, पृ. सं.- 173

28. वही, पृ. सं.- 206

29. वही, पृ. सं.- 228

30. गौतम, लक्ष्मण दत्त; गजानन माधव मुक्तिबोध; विद्यार्थी प्रकाशन, वेस्ट आजादनगर दिल्ली; संस्करण: 1972, पृ. सं.- 251

31. शास्त्री, त्रिलोचन (संपा.); मुक्तिबोध की कविताएँ; साहित्य अकादमी, रवीन्द्र भवन, 35, फिरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली; संस्करण: 1991, पृ. सं.- 67

32. वही, पृ. सं.- 64

33. वही, पृ. सं.- 170